कर्तव्यों की व्याख्या कर दी जाती है। अनेक विधि-विधानों के माध्यम से उन्हें जीवन की वास्तविकता तथा दैनिक कठिनाइयों का ज्ञान कराया जाता है जिससे वे अपने मानसिक जीवन को सन्तुलित रखकर व्यक्तित्व का समुचित रूप से विकास कर सकें। यही कारण है कि हिन्दू सामाजिक जीवन में परिवार का रूप संसार के दूसरे समाजों की अपेक्षा कहीं अधिक संगठित है और जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के तनाव हमारे समाज में आज भी सबसे कम हैं। इस संस्था का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में **पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा त्याग की भावना का विकास** करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विवाह को एक धार्मिक संस्कार का रूप दिया गया है जिससे पति और पत्नी प्रत्येक स्थिति से अनुकूलन करना सीख सकें और बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकें। कापडिया के अनुसार, **समाज में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण** करना भी हिन्दू-विवाह का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। यह उद्देश्य इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि बहुत प्राचीनकाल से ही हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में ऐसे व्यक्ति को परिवार और समाज में कोई स्थिति प्रदान नहीं की जाती जिसका विवाह न हो चुका हो।

हिन्दू-विवाह के स्वरूप
(Forms of Hindu-Marriage)

गृह्य-सूत्रों और स्मृतियों में हिन्दू-विवाह के आठ स्वरूपों का उल्लेख किया गया है।[4] विवाह के इन विभिन्न स्वरूपों को समझने से पहले ही यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दू शास्त्रकार समाज में स्त्री के सम्मान और प्रतिष्ठा के प्रति सदैव जागरूक रहे हैं। यही कारण है कि अनियमित और कुटिल तरीकों से भी यदि स्त्री से कोई व्यक्ति यौनिक सम्बन्धों की स्थापना कर लेता था, तो बाद में ऐसे सम्बन्ध को विवाह के रूप में मान्यता देने का प्रयत्न किया जाता था जिससे स्त्री के जीवन को नष्ट होने से बचाया जा सके। इस प्रकार विवाह के निम्नांकित आठ स्वरूप वास्तव में विवाह की विभिन्न आठ परिस्थितियों को स्पष्ट करते हैं। विवाह के इन आठ स्वरूपों में चार स्वरूप उत्कृष्ट माने जाते हैं, जबकि अन्य चार स्वरूप निकृष्ट कोटि के हैं और इनकी अनुमति कुछ विशेष परिस्थितियों में ही दी जाती है। पहली श्रेणी में ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्रजापत्य विवाह को सम्मिलित किया जाता है, जबकि दूसरी श्रेणी में असुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाह आते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि प्रथम श्रेणी के विवाहों से उत्पन्न सन्तान शीलवान, यशस्वी, अध्ययनशील और सम्पत्तिवान होती है, जबकि दूसरी श्रेणी के विवाहों के फलस्वरूप मिथ्यावादी, दुराचारी और धर्म-विरोधी सन्तान का जन्म होता है। विवाह के इन विभिन्न स्वरूपों को संक्षेप में निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है :—

(1) **ब्राह्म विवाह**—यह विवाहों में सबसे उत्तम कोटि का विवाह है। मनु का कथन है कि कन्या के पिता द्वारा जब किसी योग्य, वेद-पारंगत, सच्चरित्र और श्रुतिवान वर को आमन्त्रित करके उसे आभूषणों से युक्त कन्या दान के रूप में दी जाती है, तब इसी विधि को 'ब्राह्म विवाह' कहा जाता है। वर्तमान समय में विवाह के इसी स्वरूप का प्रचलन सबसे अधिक पाया जाता है।

Scanned with CamScanner

(2) **दैव विवाह**—मनुस्मृति में कहा गया है कि "यज्ञ के समय यज्ञ को समुचित रूप से कराने वाले पुरोहित (ऋत्विक) को अलंकारों से सुसज्जित करके जब कन्या दान में दी जाती है, तब इस प्रकार के विवाह को 'दैव विवाह' कहा जाता है।"[5] प्राचीनकाल में यज्ञों का विशेष महत्त्व होने के कारण किसी पुरोहित से कन्या का विवाह करना सबसे अच्छा समझा जाता था। मनु का तो यहाँ तक कथन है कि ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान सात पीढ़ी ऊपर तथा सात पीढ़ी नीचे तक के व्यक्तियों का उद्धार कर देती है। वास्तव में यह एक अतिश्योक्ति है। अनेक स्मृतिकारों ने तो इस रूप की कटु आलोचना भी की है क्योंकि ऐसे विवाहों में वर और वधू की आयु में काफी भिन्नता हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह का यह स्वरूप व्यवहार में कभी प्रचलित नहीं रहा, यद्यपि इसके द्वारा पुरोहितों की श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य किया गया।

(3) **आर्ष विवाह**—कन्या का पिता जब विवाह करने के इच्छुक ऋषि से एक जोड़ा बैल और गाय लेकर उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करता है तब ऐसा विवाह 'आर्ष विवाह' कहलाता है।[6] विवाह की इस विधि में एक जोड़ा बैल और गाय का विधान क्यों रखा गया है? इस बारे में शास्त्रकारों में मतभेद है। सबसे अधिक सम्भावना इस बात की है कि इस प्रकार की भेंट से कन्या के माता-पिता को यह विश्वास दिलाया जाता था कि उस ऋषि ने अब विवाह करने का वास्तव में निश्चय कर लिया है। इस प्रकार यह विवाह ऋषियों से ही सम्बन्धित होने के कारण 'आर्ष विवाह' कहलाता है। वर्तमान काल में विवाह के इस रूप का कोई अस्तित्व नहीं है।

(4) **प्रजापत्य विवाह**—'तुम दोनों मिलकर आजीवन धर्म का आचरण करो' यह कहकर जब कन्या का पिता वर को कन्या दान करता है, तब ऐसे विवाह को 'प्रजापत्य विवाह' कहा जाता है। वास्तव में, प्रजापत्य और ब्राह्म विवाह की विधि और आदर्शों में कोई मूलभूत अन्तर प्रतीत नहीं होता। इसी आधार पर डॉ० अल्तेकर ने यह शंका व्यक्त की है कि विवाह के आठ प्रकारों की संख्या को पूरा करने के लिए ही इस पद्धति को पृथक् रूप दे दिया गया है।[7] यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता। वास्तव में, प्रजापत्य का अर्थ होता है—प्रजा अथवा जनसाधारण का संरक्षण करने वाला। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्म विवाह के अन्तर्गत जहाँ कन्या के पिता को अपनी पुत्री के लिए वस्त्रों तथा आभूषणों की व्यवस्था करना आवश्यक है, वहीं प्रजापत्य पद्धति के अन्तर्गत विवाह की वैदिक रीति के पश्चात् भी वस्त्रों तथा अलंकारों के साथ कन्या का दान करना आवश्यक नहीं था। ऐसे विवाह परम्परागत वैदिक पद्धति के अन्तर्गत होते हुए भी जन-सामान्य अथवा निर्धन वर्ग द्वारा व्यवहार में लाये जाते होंगे जबकि ब्राह्म विवाह का प्रचलन धनी और सम्भ्रान्त वर्ग में ही सीमित रहा होगा।

(5) **असुर विवाह**—मनुस्मृति के अनुसार, "जब कन्या (अथवा उसके पिता) को जान-बूझकर यथाशक्ति धन देकर उससे स्वच्छन्दतापूर्वक विवाह किया जाये तब

Scanned with CamScanner

इसे असुर विवाह कहा जाता है।"[8] यह विवाह निकृष्ट कोटि का है। इसके अन्तर्गत उन सभी विवाहों को सम्मिलित किया जा सकता है जो वधू-मूल्य (bride-price) लेकर सम्पन्न होते हैं। यद्यपि कुछ विद्वान इस राशि को कन्या की पूरक-राशि मानते हैं जो उसके माता-पिता को मिलना उचित है, लेकिन उच्च जातियों में ऐसा विवाह करना आज भी सामाजिक अपराध के रूप में देखा जाता है। अनेक निम्न जातियों में ऐसे विवाहों का प्रचलन आज भी है लेकिन बौधायन और अनेक दूसरे शास्त्रकारों का यहाँ तक विचार था कि द्रव्य से खरीदी गयी स्त्री को 'पत्नी' कहा ही नहीं जा सकता।

(6) **गान्धर्व विवाह**—जब काम के वशीभूत होकर कन्या और वर विवाह के पहले ही यौनिक सम्बन्ध स्थापित कर लें, तब ऐसे विवाह को गान्धर्व विवाह कहा जाता है। ऐसे विवाहों में माता-पिता की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं होता। आरम्भ में ऐसे विवाह क्योंकि रूपवान गान्धर्वों और कामुक किन्नरियों के बीच होते थे, इसलिए ऐसे विवाहों को गान्धर्व विवाह कहा गया। वर्तमान समय में ऐसे विवाहों को 'प्रेम-विवाह' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि अधिकांश शास्त्रकारों ने गान्धर्व विवाह की कटु आलोचना की है लेकिन बौधायन और वात्सायन ने विवाह के इस स्वरूप को सबसे अच्छा माना है क्योंकि ये वर और कन्या की स्वतन्त्र इच्छा पर निर्भर होने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(7) **राक्षस विवाह**—मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि युद्ध में स्त्री का हरण करके उससे विवाह किया जाय तब ऐसे विवाह को राक्षस विवाह कहा जाता है। महाभारत काल में सम्भवतः इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन सबसे अधिक था जबकि किसी कन्या का हरण करने के लिए बड़े-बड़े युद्ध तक किये जाते थे। स्वयं कृष्ण और अर्जुन ने भी युद्ध के द्वारा पत्नियाँ प्राप्त की थीं। इससे स्पष्ट होता है कि स्मृतिकाल के पहले तक ऐसे विवाह को निषिद्ध नहीं समझा जाता होगा। युद्ध के द्वारा मनचाही स्त्री को प्राप्त करके उससे विवाह करने का प्रचलन क्षत्रियों में अधिक था, इसलिए इन्हें 'क्षात्र विवाह' भी कहा जाता है। बाद में ऐसे विवाहों को निकृष्ट समझा जाने लगा और इसलिए इनका व्यापक विरोध हुआ। वर्तमान समय में ऐसे विवाह बिल्कुल भी अस्तित्व में नहीं हैं।

(8) **पैशाच विवाह**—मनु के अनुसार, "सोई हुई, उन्मत, मदिरापान की हुई अथवा राह में अकेली जाती हुई लड़की के साथ कोई व्यक्ति बलपूर्वक कुकृत्य करके बाद में उससे विवाह कर ले, तब ऐसे विवाह को पैशाच विवाह कहा जाता है, जो विवाह के सभी स्वरूपों में सबसे अधर्म है।"[9] यद्यपि यह स्थिति अनाचार की स्थिति है लेकिन स्त्री के सम्मान को बनाये रखने के लिए ऐसे विवाहों को भी बाद में मान्यता दे दी जाती है। यद्यपि वशिष्ठ और आपस्तम्ब जैसे कट्टर नैतिकतावादी व्यक्तियों ने ऐसे विवाह को बिल्कुल भी मान्यता नहीं दी है, लेकिन ऐसे विवाहों में स्त्री का कोई दोष न होने के कारण अनेक धर्मशास्त्रकारों ने इसे सबसे अधिक निकृष्ट मानते हुए भी इसे मान्यता प्रदान की है।

वर्तमान समाज में विवाह के एक सामान्य नियम के रूप में ब्राह्म विवाह को

Scanned with CamScanner

ही मान्यता दी जाती है। अपवाद के रूप में गान्धर्व, असुर और पैशाच विवाहों का भी प्रचलन बना हुआ है, लेकिन दैव, आर्ष और राक्षस विवाह का समाज से पूर्णतया लोप हो चुका है। इस विवेचन से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या उपर्युक्त विधियों को हिन्दू-विवाह के स्वरूप कहना उचित होगा? वास्तविकता यह है कि विवाह के उपर्युक्त तरीके केवल विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से ही सम्बन्धित हैं। हम अधिक से अधिक ब्राह्म विवाह, प्रजापत्य विवाह और गान्धर्व विवाह को तो एक विशेष 'स्वरूप' की श्रेणी में रख सकते हैं लेकिन अन्य तरीके किसी निश्चित प्रणाली से सम्बद्ध न होकर विवाह की कुछ विशेष परिस्थितियों पर ही प्रकाश डालते हैं।

Scanned with CamScanner

उपयुक्त विधियों को हिन्दू-विवाह के स्वरूप कहना उचित होगा ? वास्तविकता यह है कि विवाह के उपर्युक्त तरीके केवल विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से ही सम्बन्धित हैं। हम अधिक से अधिक ब्राह्म विवाह, प्रजापत्य विवाह और गान्धर्व विवाह को तो एक विशेष 'स्वरूप' की श्रेणी में रख सकते हैं लेकिन अन्य तरीके किसी निश्चित प्रणाली से सम्बद्ध न होकर विवाह की कुछ विशेष परिस्थितियों पर ही प्रकाश डालते हैं।

हिन्दू विवाह : एक धार्मिक संस्कार
(Hindu-Marriage : A Sacrament)

हिन्दू-विवाह के पूर्व कथित उद्देश्यों और स्वरूपों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक संविदा (contract) अथवा अस्थायी बन्धन न होकर एक धार्मिक संस्कार है जिसकी पूर्ति प्रत्येक हिन्दू के लिए करना अनिवार्य है। **हिन्दू-विवाह एक संस्कार कैसे है ?** इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि संस्कार का क्या अर्थ है ? वास्तव में, **संस्कार का अर्थ** है शुद्धिकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन करना। **डॉ० सक्सेना** के अनुसार, 'संस्कार' शब्द का तात्पर्य ऐसे अनुष्ठान से है जिसके द्वारा मानव-जीवन की क्षमताओं का उद्घाटन होता है, जो मानव को सामाजिक जीवन के योग्य बनाने वाले गुण प्रदान करता है और जिसके द्वारा व्यक्ति को एक विशेष सामाजिक-स्तर प्रदान किया जाता है।[10] इस दृष्टिकोण से हिन्दू-विवाह निश्चय ही एक संस्कार है क्योंकि यह धार्मिक क्रियाओं के द्वारा व्यक्ति के जीवन को ऊँचा उठाता है, जीवन को परिस्कृत करता है, मानवीय स्वभाव का समाजीकरण करता है तथा अनेक धार्मिक आदेशों के द्वारा व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करता है। हिन्दू-विवाह वे सभी कार्य करता है जिससे एक व्यक्ति अपने विभिन्न दायित्वों का निष्ठा से निर्वाह कर सके और आत्म-संयम तथा त्याग के गुण उत्पन्न करके अपने को सामाजिक जीवन के योग्य बना सके। हिन्दू-विवाह की निम्नांकित विशेषताओं से स्पष्ट हो जायेगा कि यह पूर्णतया एक धार्मिक संस्कार है :—

(1) **विवाह का आधार धर्म**—हिन्दू-विवाह का उद्देश्य यौन-सन्तुष्टि न होकर धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति करना है। 'काम' को यदि कुछ महत्त्व दिया भी गया है तो केवल पुत्र-प्राप्ति के लिए, जिससे उस वंश के पितृव्यों के प्रति धार्मिक कृत्यों को पूरा किया जा सके। मनुस्मृति में कहा गया है कि 'पुत्र वह है जो पिता को 'पुत्' नरक से बचाये।' इस प्रकार हिन्दू-विवाह में यौन सम्बन्धों का स्थान अल्प दृष्टि से ही एक दोष है, यद्यपि इसका अन्तिम उद्देश्य जीवन के अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों को पूरा करना है। यह कार्य वैसा ही है जैसे बर्तन को साफ करने से पहले उसे कुछ समय के लिए राख से गन्दा करना पड़ता है। **कापडिया** का कथन है कि "जब हिन्दू विचारकों ने धर्म को विवाह का प्रथम तथा सर्वोच्च लक्ष्य माना और सन्तानोत्पादन को दूसरा स्थान दिया, तो स्वाभाविक है कि विवाह पर धर्म का आधिपत्य हो

Scanned with CamScanner

जाता।"[11] इसके अतिरिक्त यह कथन है कि 'पत्नी के अभाव में न तो पितृ-ऋण को चुकाया जा सकता है और न धार्मिक कर्तव्यों को पूरा किया जा सकता है,' भी यही स्पष्ट करता है कि हिन्दू-विवाह व्यक्ति के परिष्कार की एक क्रिया है।

(2) **मोक्ष प्राप्ति का साधन**—धर्मशास्त्रों में विवाह को 'स्वर्ग का द्वार' कहा गया है। ऐसा इस कारण है कि विवाह के द्वारा ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके विभिन्न यज्ञों को सम्पन्न कर सकता है। व्यक्ति का जीवन अनेक ऋणों से युक्त है जिनका विवेचन हम पहले कर चुके हैं। विभिन्न यज्ञों के द्वारा इन ऋणों से तब तक उऋण नहीं हुआ जा सकता जब तक व्यक्ति विवाह न करे। विवाह के बिना व्यक्ति वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के दायित्व को भी पूरा नहीं कर सकता। धर्मशास्त्रों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि अनेक ऋषियों ने अविवाहित रहकर स्वर्ग प्राप्त करने का प्रयत्न किया लेकिन उन्हें तब तक स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकी जब तक उन्होंने विवाह नहीं कर लिया। इस आधार पर जीवन में विवाह के धार्मिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुए **मनु** का कथन है कि "जिस प्रकार सभी प्राणी वायु के अवलम्बन से ही जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रमों के लोग गृहस्थ की सहायता से ही जीवन धारण करते हैं।"[12]

(3) **विवाह-सम्बन्ध का स्थायित्व**—हिन्दू-विवाह इसलिए भी एक धार्मिक संस्कार है कि इसमें पति-पत्नी का सम्बन्ध अटूट और जन्म-जन्मान्तर का माना गया है। विवाह को धार्मिक रूप दिये बिना इसमें इतनी स्थिरता कभी भी नहीं आ सकती थी। हिन्दू-विवाह के द्वारा पत्नी को पतिव्रत धर्म का महत्त्व समझाना तथा धर्मशास्त्रों और पुराणों में पतिव्रत के आदर्श का उल्लेख होना भी विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में स्पष्ट करता है। परम्परागत रूप से किसी भी स्त्री अथवा पुरुष को अपने जीवन-साथी से विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं दी गयी है। इसका कारण वे हिन्दू मान्यताएँ हैं जिनके अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध एक जन्म का न होकर जन्म-जन्मान्तर का होता है। सम्भवतः ऐसे विश्वास केवल इसलिए प्रतिपादित किये गये जिससे विवाह से सम्बन्धित दोनों पक्षों के बीच धार्मिक आधार पर स्थायी और मधुर सम्बन्ध बने रहें।

(4) **व्यक्ति की स्थिति का निर्धारक**—परम्परागत भारतीय समाज धर्म-प्रधान रहा है और इस समाज में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण बहुत बड़ी सीमा तक विवाह के द्वारा होता आया है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अविवाहित व्यक्ति का सम्पत्ति, परिवार तथा समाज में कोई स्थान नहीं रहा और साथ ही उसे प्रत्येक अवसर पर शंका की दृष्टि से ही देखा जाता है। इसके विपरीत, विवाह एक प्रकार का प्रमाण-पत्र है जिसके माध्यम से उसे सभी धार्मिक क्रियाओं में भाग लेने तथा सामाजिक जीवन में एक विशेष स्थिति प्राप्त कर लेने का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार धर्म-प्रधान समाज में विवाह के द्वारा ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण होने के कारण इसे एक धार्मिक संस्कार के रूप में मान्यता दी जाती है।

(5) **धार्मिक विधि-विधान तथा अनुष्ठान**—एक संस्कार के रूप में हिन्दू-

Scanned with CamScanner

विवाह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विवाह की सम्पूर्ण प्रक्रिया धार्मिक विधि-विधानों और अनेक ऐसे अनुष्ठानों से परिपूर्ण है जिनके द्वारा वैवाहिक जीवन में धर्म को ही एकमात्र दायित्व के रूप में स्पष्ट कर दिया जाता है। विवाह की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में जिन प्रमुख अनुष्ठानों (rituals) और संस्कारों (ceremonies) को पूरा किया जाता है, उनकी संख्या पी० वी० काणे ने 39 तक बताई है।[13] प्रस्तुत विवेचन में हम हिन्दू-विवाह से सम्बन्धित कुछ प्रमुख संस्कारों का ही उल्लेख करेंगे जिससे एक संस्कार के रूप में विवाह की धार्मिक प्रकृति को समझा जा सके :—

(क) वाग्दान—यह विवाह संस्कार का पहला महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है जिसमें कन्या-पक्ष द्वारा वर-पक्ष के प्रस्ताव को स्वीकार किया जाता है। आज यद्यपि यह स्वीकृति वर-पक्ष के द्वारा की जाती है, लेकिन फिर भी उन्हीं वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करने का प्रचलन बना हुआ है जिसमें सोम द्वारा कन्या के पिता के सामने विवाह का प्रस्ताव रखने का उल्लेख है। गृह्यसूत्रों में भी वर-पक्ष के द्वारा प्रस्ताव रखने और कन्या-पक्ष द्वारा स्वीकृति देने का विधान है। सम्भवतः मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति गिर जाने के कारण प्रस्ताव की स्वीकृति का अधिकार वर-पक्ष को मिल गया।

(ख) कन्यादान—विवाह के समय कन्या का पिता आमन्त्रित वर को अपनी कन्या 'दान' के रूप में देकर, वर से यह आश्वासन लेता है कि वह धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति में अपनी पत्नी का परित्याग कभी नहीं करेगा। यही अनुष्ठान पत्नी को पति की आजीवन संगिनी बने रहने के आदर्श को स्पष्ट करता है।

(ग) अग्निस्थापन— कन्यादान के पश्चात् वर-वधू के स्थायी बन्धन के साक्षी के रूप में अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। इस अग्नि के उत्तर-पूर्व दिशा की ओर जल कलश रखा जाता है जो समृद्धता और पवित्रता का प्रतीक है। वर और वधू अग्नि के लिए आहुतियों (offerings) देते हैं और इस प्रकार अग्नि से शक्ति तथा सुख की कामना की जाती है।

(घ) पाणिग्रहण—पाणिग्रहण का अर्थ 'दूसरे के हाथ को स्वीकार करना।' इसके लिए वर पश्चिम की ओर मुँह करके बैठता है; जबकि वधू पूर्व की ओर मुँह करके वर के बिलकुल सामने बैठती है। तब वर-वधू का हाथ पकड़कर छः मन्त्रों के द्वारा यह शब्द उच्चारित करता है कि 'मैं तेरा हाथ पकड़कर सुख की कामना करता हूँ, तू वृद्धावस्था तक मेरे साथ रहना, मेरा धर्म तेरा पोषण करना है, और मेरे द्वारा सन्तान को जन्म देते हुए तू सौ वर्ष तक जीवित रहना।' यह सभी मन्त्र गृहस्थाश्रम के दायित्व को स्पष्ट करते हैं।

(च) लाजाहोम—पाणिग्रहण के पश्चात् वधू और वर पूर्व की ओर मुँह करके खड़े हो जाते हैं। फिर वधू अपने भाई से खीलें (fried grain) लेकर अग्नि कुण्ड में डालते हुए स्वयं को पति के कुल से जोड़ने के लिए देवताओं से प्रार्थना करती है। इसी समय वह देवताओं से अपने पति के आयुष्मान होने तथा पारस्परिक अनुराग बढ़ने की भी कामना करती है।

(छ) अग्नि-परिणयन—इसके अन्तर्गत वर और वधू अग्नि के चारों ओर तीन बार परिक्रमा करते हैं। अग्नि को साक्षी करके एक-दूसरे से कहते हैं.....मैं

Scanned with CamScanner

सामवेद हूं, तू ऋग्वेद है; मैं स्वर्ग हूं, तू पृथ्वी है; हम दोनों विवाह करें, प्रजा को उत्पन्न करें, हमारे अनेक पुत्र हों, वे दीर्घायु हों, तेजवान और मनस्वी हों; हम दोनों और हमारे पुत्र सौ वर्ष तक देखते रहें, सौ वर्ष तक जीवित रहें और सौ वर्ष तक सुनते रहें।

(ज) **सप्तपदी**—यह सबसे महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। सप्तपदी के लिए वर और वधू उत्तर दिशा की ओर सात पग बढ़ाते हैं। प्रत्येक पग साथ-साथ उठाते समय विभिन्न कामनाएँ की जाती हैं। पहला पग रखते समय 'अन्न की कामना', दूसरे के द्वारा 'शारीरिक और मानसिक बल की कामना', तीसरे में 'धन की कामना', चौथे में 'सुख', पाँचवे में 'सन्तान', छठे में 'प्राकृतिक सहायता' और अन्तिम पग रखते समय 'पारिवारिक सखाभाव' की कामना की जाती है। इन सभी के साथ वर यह कामना भी करता है कि दोनों का मन एक-दूसरे के अनुकूल बने। इस अनुष्ठान के बाद विवाह कार्य सम्पन्न मान लिया जाता है।

उपर्युक्त सभी विशेषताएं हिन्दू-विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में स्पष्ट करती हैं। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उठ सकता है कि विवाह की प्रक्रिया सभी समाजों में व्यक्ति का परिष्कार करती है। फिर अन्य धर्मों में विवाह एक संस्कार क्यों नहीं है? वास्तव में प्रत्येक समाज में विवाह एक संस्कार होता है लेकिन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में इसका रूप अपेक्षाकृत कहीं अधिक व्यवस्थित है। दूसरी बात यह है कि कुछ दूसरे धर्मों में विवाह के अन्दर संविदा और सुविधापूर्ण परिस्थितियों का भी समावेश होने के कारण विवाह में धार्मिकता का अंश कुछ कम हो गया है जबकि हिन्दू-विवाह पूर्णतया धार्मिक जीवन से सम्बद्ध है और इसलिए यह एक स्पष्ट धार्मिक संस्कार बन गया है।

Scanned with CamScanner